

डॉ. अवनीश सिंह चौहान

वृंदावन, मथुरा

जन्मदिवस पर : समय के सच को शब्दों में रचने वाले राजेंद्र राव

हिंदी के वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार और साहित्यिक पत्रकार राजेंद्र राव का जन्मदिवस उनके बहुआयामी साहित्यिक अवदान को स्मरण करने तथा उनकी दीर्घ, निरंतर और सृजनशील यात्रा के मूल्यांकन का अवसर है। इस अवसर पर उन्हें हार्दिक बधाई एवं स्वस्थ, दीर्घायु और सक्रिय रचनात्मक जीवन के लिए मंगलकामनाएँ।

9 जुलाई 1944 को राजस्थान के कोटा में जन्मे राजेंद्र राव की प्रारंभिक पहचान भले ही एक मेकैनिकल इंजीनियर के रूप में रही, लेकिन उनकी मूल संवेदना साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़ी रही। तकनीकी शिक्षा और प्रबंधन के व्यावहारिक अनुभवों ने उनके रचनाकार व्यक्तित्व को एक विशिष्ट दृष्टि प्रदान की। सातवें दशक में लघु उद्योगों से अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत करने के बाद उन्होंने विभिन्न प्रतिष्ठित सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में तकनीकी प्रशिक्षण, प्रबंधन और प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन किया। इसी जीवनानुभव ने उनके साहित्य को वह व्यापक सामाजिक धरातल दिया, जहाँ मनुष्य, व्यवस्था और समय के अंतर्संबंधों को गहराई से समझा जा सकता है।

राजेंद्र राव का साहित्यिक अवतरण किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि उनके भीतर निरंतर विकसित होती संवेदना और अभिव्यक्ति की स्वाभाविक परिणति थी। उनकी पहली कहानी 'शिफ्ट' के प्रकाशन के साथ उनकी कथा-यात्रा का औपचारिक आरंभ हुआ। इसके बाद 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'धर्मयुग', 'सारिका', 'कहानी', 'रविवार' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ, धारावाहिक उपन्यास, कथा-शृंखलाएँ, रिपोर्ताज और स्तंभ प्रकाशित होते रहे। उनकी लेखकीय यात्रा की विशेषता उसकी निरंतरता, गंभीरता और अनुभव-संपन्नता रही है। उन्होंने साहित्य को केवल रचना का माध्यम नहीं, बल्कि समय और समाज को समझने का एक संवेदनशील उपकरण माना।

राजेंद्र राव की कथा-सृष्टि का केंद्र मनुष्य और उसका जीवन-संघर्ष है। उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को जीवन के ठोस यथार्थ, सामाजिक अनुभवों और मानवीय संवेदनाओं से गहरे स्तर पर जोड़े रखा। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताएँ, सामाजिक अंतर्विरोध, बदलते पारिवारिक और मानवीय संबंध तथा समय की विडंबनाएँ सहज रूप में अभिव्यक्त होती हैं। वे किसी पूर्वनिर्धारित वैचारिक आग्रह या साहित्यिक खेमेबंदी के बजाय जीवन के वास्तविक अनुभवों और मनुष्य की आंतरिक स्थितियों को अपनी रचना का आधार बनाते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य समय विशेष का दस्तावेज होने के साथ-साथ व्यापक मानवीय अनुभवों का प्रतिनिधि भी बन जाता है।

उनकी कथा-दृष्टि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता साधारण जीवन-स्थितियों में छिपे असाधारण मानवीय पक्षों को पहचानने की क्षमता है| उनकी रचनाओं में न तो कृत्रिम नाटकीयता दिखाई देती है और न ही भाषा का अनावश्यक अलंकरण| उनकी भाषा सहज, पारदर्शी और आत्मीय है, जो पाठक को कथा-संसार से जोड़ते हुए उसे अपने समय, समाज और स्वयं के भीतर झाँकने के लिए प्रेरित करती है| उनकी रचनात्मकता अनुभव की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की विश्वसनीयता पर आधारित है| कुलमिलाकर राजेंद्र राव का साहित्य इस विश्वास को पुष्ट करता है कि एक संवेदनशील रचनाकार अपने समय को केवल शब्दों में दर्ज नहीं करता, बल्कि उसकी अनकही आवाजों, अंतर्ध्वनियों और मानवीय प्रश्नों को भी पहचानता है| उनकी रचनाएँ अनुभव की प्रामाणिकता, भाषा की सहजता और सामाजिक सरोकारों के कारण हिंदी कथा-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं|

राजेंद्र राव की साहित्यिक उपलब्धियाँ उनके प्रकाशित कथा-संग्रहों और उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं| 'असत्य के प्रयोग', 'नौसिखिया', 'दूध के दांत', 'सूली ऊपर सेज पिया की' और 'कोयला भई न राख' जैसे कथा -संग्रह उनकी व्यापक जीवन-दृष्टि और कथा-कौशल के प्रमाण हैं| 'ना घर तेरा ना घर मेरा' जैसे उपन्यास में उन्होंने सामाजिक संबंधों, मानवीय आकांक्षाओं और जीवन की जटिलताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया है| अब तक प्रकाशित उनके एक दर्जन से अधिक कथा-संग्रह, उपन्यास और कथेतर कृतियाँ उनकी निरंतर सृजनशीलता, व्यापक जीवन-दृष्टि और हिंदी साहित्य के प्रति गहरी प्रतिबद्धता की सशक्त अभिव्यक्ति हैं|

साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में भी राजेंद्र राव का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है| प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं से जुड़कर उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता को गंभीर दृष्टि, वैचारिक विस्तार और रचनात्मक ऊर्जा प्रदान की| बाद के वर्षों में दैनिक जागरण में साहित्य संपादक के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने साहित्य और समाज के बीच संवाद को मजबूत किया तथा नए रचनाकारों और साहित्यिक गतिविधियों को व्यापक मंच प्रदान किया|

उनके जन्मदिवस पर हम उनके बहुआयामी साहित्यिक अवदान का अभिनंदन करते हैं और कामना करते हैं कि उनकी लेखनी भविष्य में भी समाज, समय और मनुष्य के विविध अनुभवों को इसी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करती रहे|

विनम्र श्रद्धांजलि

सत्यनारायण : नवगीत की जनपक्षधर चेतना का एक महत्वपूर्ण स्वर

किसी कवि के निधन को केवल एक साहित्यकार के अवसान के रूप में दर्ज करना उसके रचनात्मक अवदान को सीमित कर देना है। कवि का वास्तविक मूल्यांकन इस बात से होता है कि उसने अपने समय को कितनी गहराई से पहचाना, उसकी अंतर्वस्तु को किस कलात्मकता से अभिव्यक्त किया और मनुष्य के भविष्य के प्रति कैसी वैचारिक एवं संवेदनात्मक प्रतिबद्धता दिखाई। इस कसौटी पर कविवर सत्यनारायण जी का निधन हिंदी नवगीत के लिए निस्संदेह एक महत्वपूर्ण क्षति है। 28 अगस्त 2026 को भोर के ढाई बजे उनके महाप्रयाण के साथ नवगीत की उस पीढ़ी का एक विशिष्ट और जनपक्षधर स्वर शांत हो गया, जिसने कविता को जीवन के निकट और अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों के सम्मुख खड़ा किया।

3 सितंबर 1935 को भोजपुर, बिहार के कौलौडिहरी गाँव में जन्मे सत्यनारायण जी इतिहास में एम.ए. थे। बिहार सरकार में पदाधिकारी के रूप में अपनी सेवाएँ पूरी करने के बाद उन्होंने स्वतंत्र लेखन और नवगीत-साधना को निरंतर आगे बढ़ाया। 'तुम ना नहीं कर सकते', 'टूटते जल-बिंब', 'सभाध्यक्ष हँस रहा है', 'सुनें प्रजाजन', 'प्रजा का कोरस' आदि उनकी प्रमुख कृतियों में हैं। 'नुक्कड़ कविता' जैसी पत्रिका के संपादन तथा 'धरती से जुड़कर' जैसे संपादित काव्य-संकलन के माध्यम से भी उन्होंने साहित्यिक-सांस्कृतिक हस्तक्षेप किया। 1974 के जे.पी. आंदोलन में फणीश्वरनाथ रेणु की अगुआई में नुक्कड़-चौराहों, जुलूसों और सभाओं में कविता के माध्यम से जन-जागरण में उनकी सक्रिय भागीदारी उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के उस जनोन्मुख पक्ष को रेखांकित करती है, जो उनकी काव्य-दृष्टि का मूल आधार है। 'टूटते जल-बिंब' के लिए प्राप्त सम्मान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का 'विशिष्ट साहित्य सेवा सम्मान' तथा बिहार राज्य गीत 'तुझको शत-शत वंदन बिहार' के रचनाकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा उनके व्यापक रचनात्मक अवदान की सार्वजनिक स्वीकृति है।

सत्यनारायण जी बड़े कवि थे— और इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण उनकी काव्य-दृष्टि में निहित इतिहास-बोध है। वे इतिहास को अतीत के गौरवगान के लिए नहीं, बल्कि वर्तमान की आलोचना और आत्मपरीक्षण के लिए बरतते हैं। उनका इतिहास-बोध अतीत-राग नहीं, वर्तमान को परखने का उपकरण है। 'पाटलिपुत्र' नवगीत इसका सशक्त उदाहरण है— नहीं,/ पाटलिपुत्र नहीं हम/ हम केवल कुम्हार!

यहाँ 'पाटलिपुत्र' महज एक ऐतिहासिक नगर नहीं रह जाता; वह सभ्यता की स्मृति, सांस्कृतिक वैभव और वर्तमान की विडंबना का प्रतीक बन जाता है। कवि अतीत के गौरव और वर्तमान की विखंडित सामाजिक चेतना के बीच उपस्थित गहरी दूरी को पहचानता है— खंडहर-खंडहर/ होकर हम/ अब जीने को लाचार।

यहाँ 'हम' की व्यापकता विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। यह किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग का दुःख नहीं, बल्कि सामूहिक सामाजिक विघटन का बोध है। इसी क्रम में कलिंग, बुद्ध और धम्म की स्मृतियाँ वर्तमान की हिंसक एवं विभाजित मानसिकता पर एक नैतिक टिप्पणी बन जाती हैं— अब तो अपनी-अपनी डफली/ अपना-अपना राग/ रेंग रही है भीतर-भीतर/ कोई काली आग।

नवगीत के अपेक्षाकृत छोटे कलेवर में सामाजिक आलोचना की इतनी तीव्रता उसकी बड़ी उपलब्धि है। मिथकीय और ऐतिहासिक संकेतों के सहारे कवि वर्तमान को उसकी सभ्यतागत जिम्मेदारियों के सामने खड़ा करता है।

सत्यनारायण जी की कविता का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी लोकतांत्रिक और जनपक्षधर संवेदना है। वे बड़े-बड़े विमर्शों को साधारण मनुष्य के छोटे-छोटे अनुभवों से जोड़ते हैं। 'मन की बात' नवगीत में यह प्रवृत्ति अत्यंत सहज रूप में सामने आती है— बैठो/ कुछ मन की बतियाएँ/ छोटे-छोटे सुख-दुःख अपने/ छोटी-छोटी हैं इच्छाएँ।

यहाँ 'छोटे' शब्द को कमतर अर्थ में ग्रहण करना भूल होगी। ये छोटी इच्छाएँ ही मनुष्य के वास्तविक जीवन की इकाइयाँ हैं। आधुनिक मनुष्य का जीवन असाधारण घोषणाओं से कम और इन्हीं छोटी आकांक्षाओं, अभावों, सुख-दुःखों तथा संबंधों से अधिक निर्मित होता है।

इसी कविता में कवि सत्ता, प्रतिष्ठा और सामाजिक आडंबर के विरुद्ध अपनी असहमति दर्ज करता है— बड़े-बड़े सपने हैं जिनके/ वे भी हैं आँधी के तिनके/ जो विशेषणों से मंडित है/ कहाँ बचीं उनकी संज्ञाएँ।

'विशेषण' और 'संज्ञा' का यह विरोध केवल भाषिक चमत्कार नहीं है। इसके भीतर उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना है, जहाँ मनुष्य की वास्तविक पहचान उसकी उपाधियों, पदों और विशेषणों के पीछे दब जाती है। इसके बरक्स कवि अपनी स्थिति को स्पष्ट करता है— अपना सीधा-सादा रस्ता/ चल न सके हम दाएँ-बाएँ। यह आत्मस्वीकृति कविता को नैतिक विश्वसनीयता प्रदान करती है।

सत्यनारायण जी का कवि केवल सामाजिक यथार्थ का साक्षी नहीं है; वह अपने सर्जक-अस्तित्व को लेकर भी सजग है। 'शब्द से भरता हुआ' नवगीत में रचना-प्रक्रिया का आत्मपरक और लगभग आध्यात्मिक बोध दिखाई देता है— कौन है मुझमें/ मुझे यों सार्थक करता हुआ।

कवि अपने भीतर उपस्थित उस अदृश्य शक्ति को पहचानने का प्रयत्न करता है, जो उसे शब्द देती है— मौन रहकर भी मुझे/ नित शब्द से भरता रहा। यहाँ 'मौन' और 'शब्द' का द्वंद्व रचनात्मक अनुभव की जटिलता को उद्घाटित करता है। कवि के लिए शब्द महज अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं; वह जीवन को अर्थ देने वाली आंतरिक ऊर्जा है।इसीलिए जब जीवन की राह अनजानी और अंधकारमय होती है, तब वही अदृश्य सत्ता प्रकाश का स्रोत बनती है— आँख बन मेरी वही/ मेरा तमस हरता रहा।

इस नवगीत में सत्यनारायण जी के काव्य व्यक्तित्व का वह पक्ष दिखाई देता है जहाँ सामाजिक चेतना और आत्मानुभूति एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। भीतर का अनुभव बाहर की दुनिया से लगातार संवाद करता है।

सत्यनारायण जी की कविता की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सामाजिक आलोचना अंततः निराशावाद में परिणत नहीं होती। वे अपने समय की विडंबनाओं को पहचानते हुए भी भविष्य की संभावनाओं में विश्वास बनाए रखते हैं। 'सपने आने वाले कल के' में यह विश्वास अत्यंत संक्षिप्त और प्रभावी ढंग से व्यक्त हुआ है— टूट-टूट कर/ होंगे पूरे/ आज भले अधबने-अधूरे।

‘टूट-टूट कर’ और ‘अधबने-अधूरे’ जैसे शब्द वर्तमान की कठिनाइयों को स्वीकार करते हैं, लेकिन कविता का अंतिम स्वर पराजय का नहीं है— ख़त्म न होंगे/ बने रहेंगे/ कठिन समय में/ तने रहेंगे/ ये/ संगी-साथी मंजिल के।

यहीं सत्यनारायण जी का नवगीत सामाजिक यथार्थवाद से आगे बढ़कर मानवीय आशा का काव्य बनता है। उनका आशावाद कृत्रिम अथवा घोषणात्मक नहीं है; वह संघर्ष की जमीन से उपजता है। इसलिए उसमें विश्वास भी है और प्रतिरोध भी।

‘ये त्रासद से भरे दिन अजूबे’ सत्यनारायण जी की सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि का विशेष रूप से उल्लेखनीय उदाहरण है। यहाँ महाभारत, नालंदा, मगध, काशी और कबीर— विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्मृतियाँ एक साथ वर्तमान की नैतिक विडंबना को आलोकित करती हैं। वे लिखते हैं— इन्द्रप्रस्थ में धृतराष्ट्रों का/ पुत्र मोह आता है आड़े/ नालंदा जल रहा मगध में/ जरासंध के खुले अखाड़े। यहाँ मिथक अतीत का पुनरुत्पादन नहीं, वर्तमान का रूपक बन जाता है। ‘धृतराष्ट्र’ और ‘जरासंध’ जैसे चरित्र सत्ता, हिंसा, स्वार्थ और अंधे मोह की समकालीन मानसिकताओं के प्रतीक बनकर सामने आते हैं।

काशी का दृश्य कविता को उसकी सबसे मार्मिक मानवीय ऊँचाई तक ले जाता है— और पुत्र का कफन माँगता/ हाथ पसारे खड़ा पिता है। इसके बाद कवि का प्रश्न महज काव्यात्मक प्रश्न नहीं रह जाता— इस त्रासद को थाहे कौन? यह प्रश्न सीधे पाठक की नैतिक चेतना को संबोधित करता है। सत्यनारायण जी की कविता की शक्ति इसी में है कि वह सामाजिक त्रासदी को आँकड़ों, अमूर्त अवधारणाओं अथवा नारों में नहीं, बल्कि मनुष्य की मूर्त पीड़ा के दृश्य में रूपांतरित करती है।

कविता के अंतिम हिस्से में कबीर का संदर्भ इसी मानवीय परंपरा को आगे बढ़ाता है— बीच बजारे दास कबीरा/ कौन जतन से चादर ओढ़े।" कबीर की स्मृति यहाँ जाति, विभाजन और सामाजिक पाखंड के विरुद्ध उस निर्भीक मानवीय परंपरा का संकेत है, जिससे सत्यनारायण जी का कवि अपने को जोड़ता है।

सत्यनारायण जी के नवगीतों को केवल ‘भावुक’ या ‘गीतात्मक’ कविताओं के रूप में पढ़ना उनके साहित्य के साथ न्याय नहीं होगा। उनकी रचनाओं में इतिहास-बोध, सामाजिक आलोचना, लोक-संवेदना, जनपक्षधरता, मिथकीय पुनर्पाठ, आत्मचिंतन और भविष्य के प्रति आस्था— इन सभी का अंतर्संबंध दिखाई देता है। उनकी भाषा सहज और संप्रेषणीय है, किंतु उस सहजता के भीतर अर्थ की अनेक परतें सक्रिय रहती हैं। यही उनकी काव्य-भाषा की विशिष्ट शक्ति है।

नवगीत के विकासक्रम में उनका महत्त्व इस बात में भी है कि उन्होंने गीतात्मकता को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। उनके यहाँ लय संवेदना को वहन करती है और बिंब विचार को। वे कविता को न तो केवल निजी अनुभूति तक सीमित करते हैं और न उसे नारे में बदलते हैं। उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में व्यक्ति और समाज, इतिहास और वर्तमान, निराशा और आशा, शब्द और मौन लगातार एक-दूसरे से संवाद करते हैं।

उनकी यह जनपक्षधरता केवल काव्य-विचार नहीं थी; जीवन में भी उन्होंने कविता को जनता के बीच ले जाने का

साहस किया| 1974 के जे.पी. आंदोलन के दिनों में फणीश्वरनाथ रेणु की अगुआई में नुक्कड़-चौराहों और जनसभाओं में कविता-पाठ करते हुए उन्होंने कविता की एक ऐसी भूमिका को जिया, जिसमें कवि और पाठक के बीच कोई दूरस्थ मंच नहीं था| जनता अपनी ही भाषा में कविता से संवाद कर रही थी और कविता जनता के संघर्ष की आवाज बन रही थी| इस अनुभव की अनुगूँज उनके 'प्रजा का कोरस' जैसे रचनात्मक तेवर में भी सुनाई देती है|

सत्यनारायण जी की अपनी मान्यता भी उल्लेखनीय थी कि कविता और गीत के बीच कृत्रिम विभाजन की दीवार खड़ी करना उचित नहीं| उनके लिए रचना का कथ्य ही उसके शिल्प को जन्म देता है| यही कारण है कि उनके नवगीत में गीत की लयात्मकता और कविता की वैचारिक बेचैनी एक साथ दिखाई देती है|
आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं, उनकी अपनी पंक्तियाँ ही उनके काव्य-जीवन का सबसे सच्चा परिचय देती हैं—
मौन रहकर भी/ मुझे/ नित शब्द से भरता रहा| सत्यनारायण जी का शरीर अब मौन है, किंतु उनके शब्द मौन नहीं हुए हैं| वे इतिहास के खंडहरों से प्रश्न करते रहेंगे, छोटे-छोटे सुख-दुःखों के बीच मनुष्य को खोजते रहेंगे, अंधकार में आँख बनेंगे और कठिन समय में सपनों के 'संगी-साथी' बने रहेंगे|

इस अर्थ में सत्यनारायण जी का निधन एक कवि के जीवन का अंत है, उसकी कविता का नहीं; एक देह का अवसान है, उस जीवन-दृष्टि का नहीं जिसे उन्होंने अपने नवगीतों में अर्जित और अभिव्यक्त किया|

हिंदी नवगीत उन्हें केवल अपने एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार के रूप में नहीं, बल्कि समय की विडंबनाओं के बीच मनुष्य और उसकी बची हुई संवेदना पर विश्वास करने वाले कवि के रूप में याद करेगा| और मुझे विश्वास है कि उनकी कविता हमारे समय से सदैव पूछती रहेगी— इस त्रासद को थाहे कौन?

कविवर सत्यनारायण जी को अश्रुपूरित, विनम्र श्रद्धांजलि|